Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 3, May-2018, ISSN 2230-7540

महात्मा गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्धधर्म दर्शन के प्रमुख तत्व व सिद्धान्त

Shveta Kumari[1]* Dr. Ramakant Sharma[2]

[1] Researsch Scholar

[2] Research Supervisor, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

सारांश:- ***ई.पू. छठी शताब्दी में धार्मिक कर्मकाण्डों, यज्ञवाद, बहुदेववाद के जाल एवं प्रवृतिवादी तथा दैवतवादी दृष्टिकोण से संत्रस्त जनमानस को मुक्ति दिलाकर सरल, निवृत्तिमार्गी तथा मध्य आध्यात्मिक पथ का चिन्न की ओर प्रवृत्त करने वाले थे। सिद्धार्थ जो पीछे महात्मा बुद्ध कहलाये। ई.पू. 563 में शाक्य गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु, उत्तर-प्रदेश के आज का सिद्धार्थनगर जनपद जो पहले बस्ती जिले का तिलौराकोट था, के निकट नेपाल की तराई में लुम्बिनी, आज का रूमिन देई, के वन में सिद्धार्थ ने जन्म ग्रहण किया। यहाँ पर अशोक का एक लघु स्तम्भ लेख मिला है जिसमें लिखा है 'हिद बुद्धे जातेति। इससे यहाँ बुद्ध के जन्म की पुष्टि होती है। बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन तथा माता का नाम माया था। बौद्ध धर्म भारत का ही नहीं अपितु विश्व के मान्य सभी धर्मों में से एक है। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति आकस्मिक नहीं बल्कि वैदिक युग से अब तक के पूँजीगत विश्वासों के सत्यान्वेषण का प्रतिफल था। यह धर्म ऐसे काल में अद्भूत हुआ जिसमें मनुष्य की जिज्ञासा युग पुरातन के संचित विश्वासों के आवरण को चीरकर प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता को देखना चाहती थी। मनुष्य की उद्भूत तर्कशीलता एवं सत्योन्वेशी दृष्टि के समक्ष अन्धविश्वास की प्राचीनता काँप रही थी, कर्मकाण्ड की विशाल दीवारें जर्जरित हो रही थी और अन्धविश्वासों पर संरोपित पुरातन मान्यतायें अब मानव के सम्मुख निराश सी दिखायी देने लगी थी। ऐसे संक्रमण काल में महात्मा गौतम बुद्ध रूपी दिव्य ज्योति का आविर्भाव हुआ जिसने बौद्ध धर्म का सूत्रपात्र कर भारत में एक नवीन धार्मिक जागृति का सृजन किया। बौद्धधर्म दर्शन के प्रमुख तत्वों एवं सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए बौद्धधर्म को भली-भांति समझा जा सकता है।***

शब्द संकेत:- ***गौतम बुद्ध, बौद्धधर्म दर्शन के विभिन्न तत्वए वं सिद्धान्त***

----------X----------

भूमिका:-

ई.पू. छठी शताब्दी में धार्मिक कर्मकाण्डों, यज्ञवाद, बहुदेववाद के जाल एवं प्रवृतिवादी तथा दैवतवादी दृष्टिकोण से संत्रस्त जनमानस को मुक्ति दिलाकर सरल, निवृत्तिमार्गी तथा मध्य आध्यात्मिक पथ का चिन्न की ओर प्रवृत्त करने वाले थे। सिद्धार्थ जो पीछे महात्मा बुद्ध कहलाये। ई.पू. 563 में शाक्य गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु, उत्तर-प्रदेश के आज का सिद्धार्थनगर जनपद जो पहले बस्ती जिले का तिलौराकोट था, के निकट नेपाल की तराई में लुम्बिनी, आज का रूमिन देई, के वन में सिद्धार्थ ने जन्म ग्रहण किया। यहाँ पर अशोक का एक लघु स्तम्भ लेख मिला है जिसमें लिखा है 'हिद बुद्धे जातेति'। इससे यहाँ बुद्ध के जन्म की पुष्टि होती है। बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन तथा माता का नाम माया था। बौद्ध धर्म भारत का ही नहीं अपितु विष्व के मान्य धर्मों में से एक है। बौद्ध धर्म की उत्पत्ति आकस्मिक नहीं बल्कि वैदिक युग से अब तक के पूँजीगत विश्वासों के सत्यान्वेषण का प्रतिफल था।

बौद्धधर्म का सूत्रपात्र महात्मा गौतम बुद्ध ने किया एवं यह धर्म ऐसे काल में प्रस्फूटित हुआ जिसमें मनुष्य की जिज्ञासा युग पुरातन के संचित विश्वासों के आवरण को चीरकर प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता को देखने की समझ पैदा करती है। मनुष्य की उद्भूत तर्कशीलता एवं सत्योन्वेशी दृष्टि के समक्ष अन्धविश्वास की प्राचीनता काँप रही थी, कर्मकाण्ड की विशाल दीवारें जर्जरित हो रही थी और अन्धविश्वासों पर संरोपित पुरातन मान्यतायें अब मानव के सम्मुख निराश सी दिखायी देने लगी थी। ऐसे संक्रमण काल में महात्मा बुद्ध रूपी दिव्य ज्योति का आविर्भाव हुआ। बौद्धधर्म दर्शन के प्रमुख तत्व व सिद्धान्त निम्नलिखित है -

www.ignited.in

क्षणिकवाद:

धम्मपद में कहा गया है – 'जो नित्य तथा स्थायी लगता है वह नाशवान है। जो महान लगता है उसका भी पतन होगा।' इस प्रकार संसार में सभी कुछ जड़-चेतन है अनित्य है, सागर के जल की तरह चलायमान है, परिवर्तनशील है। उसमें कार्य-कारण सम्बन्ध है। तभी बुद्ध ने कहा था कि 'जो नाशवान है उसका नाश अवश्य होगा।' उन्होंने न किसी वस्तु को न केवल स्थयी 'सत्' माना न केवल नाशवान- 'असत्'। बल्कि इन्हें परिवर्तनशील कहकर दोनों अतियों का समन्वय किया। इसी परिवर्तनशील या अनित्यवादी बुद्ध के विचार को क्षणिकवाद कहा गया है।

अनात्मवाद:-

बुद्ध का मत है कि 'विश्व में न कोई आत्मा है और न आत्मा की तरह कोई और वस्तु। पाँचो ज्ञानेन्द्रिय, मन तथा मन की वेदनाएँ आत्मा से रहित हैं।' यही बुद्ध का अनात्मवाद है। पर दूसरे दार्शनिक आत्मा को नित्य, स्थायी मानते हैं जो शरीर से दूसरे शरीर में मरने पर चली जाती है। वह मरती नहीं। यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। बुद्ध ने आत्मा को अस्थायी, मात्र, कल्पना और हास्यास्पद विचार कहा है। उन्होंने इसे विज्ञान का प्रवाह कहा है जैसे प्रवाहित जल के बूंद में एकमयता होने पर भी वह बदलता रहता है। बौद्ध दार्शनिक नागसेन ने कहा कि शारीरिक पाँच स्कन्धों से अलग कुछ नहीं है। आत्मा कोई अलग तत्त्व नहीं है जैसे रथ जो पहिया, आसन, घोड़ा आदि के मिलने पर उसे रथ कहते हैं इससे अलग रथ कुछ नहीं है।

बुद्ध ने भी सारनाथ में पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश के समय बताया कि पाँचों स्कन्ध - रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान में से कोई आत्मा नहीं है क्योंकि ने नश्वर तथा रोगधीन हैं। फिर आत्मा कैसे होगी। इसी से उन्होंने आत्मा विषय पर विचार करने को मना किया तथा अपने धर्म को 'अमनसिकरणीय' धर्म बताया।

अनीश्वरवाद:-

बुद्ध ने सृष्टिकर्ता ईश्वर को मानना अनुचित बताया है। उनकी दृष्टि में यह संसार अनित्य है परिवर्तनशील है तो फिर एक ऐसी सत्ता को इसका कर्ता कैसे बताया जा सकता है जिसे कहा जाता है कि वह नित्य और अनश्वर है। अतः यह सृष्टि उत्पत्ति और विनाश के नियम पर आधारित है। ईश्वर स्वयं पूर्ण माना जाता है फिर उसकी सृष्टि कैसे अपूर्ण है तथा जब वह सच्चिदानन्द है तो उसकी सृष्टि में पाँच पाप, दुःख, अशुभ आदि का स्थान क्यों है? ईश्वर को विश्व की सृष्टि करने के लिए क्या आवश्यकता थी? यदि इसके बिना वह काम नहीं कर सकता था तो वह अपूर्ण है। यदि वह पूर्ण होकर भी निष्प्रयोजन संसार की रचना करता है तो पागल है। इसी से उन्होंने माना कि सृष्टि की रचना ईश्वर द्वारा नहीं, कार्य-कारण के नियम द्वारा हुई है। कार्य-कारण का संचालक अगर ईश्वर को माना जाय तो स्पष्ट है कि ईश्वर अपूर्ण है जिसकी पूर्ति के लिए कार्य-कारण का संचालन करता है। इसी से वह ईश्वर की सत्ता को प्रभावित नहीं करते हैं। तभी उन्होंने अनुयायी भिक्षुओं को उपदेश दिया कि ईश्वर पर निर्भर न रहकर स्वयं अपना मार्ग खोजो - 'आत्मदीपो भव'।

निर्वाण:-

बौद्ध धर्म के अनुसार "निर्वाण" का अर्थ है "दुःखो का अन्त"। "निर्वाण" अभावात्मक नहीं बल्कि भावात्मक है। "निवार्ण" का अर्थ जीवन निरोध नहीं बल्कि मनोभाव निरोध तथा चित्तवृत्ति निरोध है। अतएव बौद्ध धर्म के अनुसार निर्वाण का अर्थ जीवन का नाश नहीं अपितु दुःखों का अन्त है। बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय में निर्वाण को साक्षात् सर्वोत्तम स्थायी सुख कहा गया है- एतं रवो परमंणं एतं सुखभवुन्तमम्। निर्वाण के विषय में कहा गया है कि निर्वान्ति धीरा यथायं प्रदीपो अर्थात् जिस प्रकार दीपक में डाले गये तेल के समाप्त हो जाने पर वह बुझ जाता है, उसी प्रकार काम, क्रोध, भोग आदि के नष्ट हो जाने पर आवागमन नष्ट हो जाता है। अतः तृष्णा आदि के नष्ट हो जाने पर ही मनुष्य को निर्वाण की प्राप्ति होती है। अतः बुद्ध के सम्बन्ध में निवार्ण का अर्थ है इस ज्योति शिखा के जलते-जलते बुझ जाना अर्थात् निर्वाण में जीवन ज्योति जलते-जलते बुझ जाती है।

निर्वाण का स्परूप तर्कयुक्त होते हुए भी उसकी सत्ता निर्विवाद है। निर्वाण में दुःखों का अन्त हो जाता है किन्तु सबकुछ का अन्त नहीं होता। उपनिषदों में ब्रह्म को प्रायः सद्रूप कहा गया है। दूसरी ओर निर्वाण अभाव रूप नहीं होते हुए भी भाव रूप हैं, नहीं कहा जा सकता। उपनिषदों में ब्रह्म को जगत का कारण बताया गया है। निर्वाण को केवल जगत के लक्ष्य के रूप में ही संकेतित किया गया है। किन्तु यहाँ पर भी प्राचीन उपनिषदों एवं बौद्ध संदर्भो में जगत का मिथ्यारूप शुद्ध से ज्ञात होने पर भी स्पष्ट कहा नहीं जा सकता है।

शून्यवाद:-

शून्यवाद बौद्ध धर्म-दर्शन में भौतिक पदार्थो को व्यक्त करने की एक ऐसी विधि है जिसमें सभी भौतिक तत्त्वों को अन्त में शून्य में अन्तर्निहित कर लिया जाता है। शून्यवादियों के अनुसार किसी भी वस्तु का स्वरूप चार प्रकार से बताया जा सकता है – (I) अस्ति (II) नास्ति (III) अस्ति च नास्ति च (IV) न अस्ति न च नास्ति च। अर्थात् (I) वस्तु है (II) वस्तु नहीं है (III) वस्तु है और नहीं भी है (IV) वस्तु न है और न नहीं है। बौद्ध धर्म दर्शन

www.ignited.in

का सर्वाधिक विवाद का विषय यही शून्यवाद है। नागार्जुन से प्राचीन हीनयानी सम्प्रदायों में भी शून्यता एवं नैरात्म्य को एक सीमित अर्थ में ग्रहण किया गया था। मनुष्य एक प्रकार का 'संघात' एवं संतान है, एक प्रवाहगत समूह।

विज्ञानवादियों के अनुसार शून्यता में लक्षणों का अभाव है और तत्त्वतः यह एक अलक्षण "वस्तु" के क्योंकि शून्यता की सम्भावना के लिए दो बातों का होना परमावष्यक है -

1. उस आश्रय का अस्तित्व जो शून्य है और 2. किसी वस्तु का अभाव जिसके कारण हम कह सकते हैं कि यह शून्य है। पर यदि दोनों का अस्तित्व न माना जाय तो शून्यता असम्भव है। शून्यता को विज्ञानवादी "वस्तुमात्र" मानते हैं। "वस्तुमात्र" चित्तविज्ञान या आलयविज्ञान है जिसमें सास्रव-बीज एवं अनार्सव बीज का संग्रह रहता है। प्रतीत्य समुत्पादः- बौद्ध-धर्म-दर्शन में प्रतीत्य समुत्पाद दुःख समुदाय के प्रश्न को समाधान करने के साधन के रूप में वर्णित किया गया है। दुःख-निरोध के लिए दुःख की उत्पत्ति के कारण के यथारूप का ज्ञान बौद्ध धर्म में आवश्यक बताया गया है। प्रतीत्य समुत्पाद में प्रतीत्य एवं समुत्पाद दो शब्द संयुक्त है - प्रतीत्य = किसी वस्तु की प्राप्ति होने पर + समुत्पाद = अन्य वस्तु की उत्पत्ति होना। प्रतीत्य समुत्पाद बौद्ध मत का कारणवाद है। इसके अनुसार एक वस्तु से दूसरी वस्तु की उत्पत्ति होती है - अस्मिन सति, इदं भवति। भगवान बुद्ध ने कहा था - "आदि और अन्त का विचार निरर्थक है, मैं धम्म का उपदेश देना चाहता हूँ। ऐसा होने पर ऐसा होता है।" अर्थात् इसके आने से इसकी उत्पत्ति होती है इसके न रहने से यह नहीं होता। जो प्रतीत्य समुत्पाद को समझाता है, वह धम्म को समझाता है और जो धम्म को समझाता है वह प्रतीत्य समुत्पाद को भी समझाता है। जिस पर चढ़कर कोई भी व्यक्ति बुद्ध की दृष्टि से इस संसार को देख सकता है।

द्वादश निदान की प्रक्रिया:-

अविद्या - अभिधर्म कोष में अविद्या को मोह और "तमः स्कन्ध" कहा गया है। बौद्ध धर्म में अविद्या चार आर्य सत्यों के ज्ञान का अभाव बताया गया है। वस्तुतः अविद्या बुद्धि का भ्रान्त रूप अथवा मिथ्या अवस्था नहीं है, प्रत्युत दर्शन का अनादि स्वरूप है। अनित्य, दुखात्मक और अनात्मिक भौतिक जगत् में अहंकार से सुख की खोज में लगे रहने के हमारे प्रयास में यह एक आवरण है जो कि चित्त की स्वाभाविक अवस्था को ढके रहता है। इसकी निवृत्ति प्रतीत्य समुत्पाद के साक्षात्कार से ही होती है।

(I) संस्कार - प्रतीत्य समुत्पाद के प्रसंग में "संस्कार" कर्म का ही सूक्ष्म मानसिक रूप है।

(II) विज्ञान - प्रतीत्य समुत्पाद के संदर्भ में विज्ञान प्रतिसन्धि-स्कन्ध है।

(III) नामरूप - विज्ञान क्षण से शडायतन की उत्पत्ति तक की अवस्था है।

(IV) शडायतन - शडायतन का स्पर्श, ज्ञान के पूर्व के पाँच स्कन्धों के रूप में स्वीकार किया गया है। इन्द्रियों के प्रादुर्भाव-काल से इन्दिय, विषय और विज्ञान के अन्तिम काल तक को शडायतन कहा गया है।

(V) स्पर्श - साधारण अर्थ में स्पर्श इन्द्रिय, विषय के साथ 'समीपता' है। उससे उत्पन्न होने वाला सुख दुःख का अनुभव ही वेदना है अतएव ज्ञान की शक्ति के उत्पन्न से पूर्व की अवस्था स्पर्श, सुख, दुखादि है। जब तक बालक सुख-दुखादि का अनुभव करने में समर्थ नही होता, तब तक की अवस्था स्पर्श कहलाती है।

(VI) वेदना - स्पर्श से उत्पन्न होने वाले सुख-दुख के अनुभव को वेदना कहा गया है। अनेक प्रकार से वेदनाओं का वर्गीकरण किया जाता है जैसे तृष्णा के तीन प्रकार बताये गये हैं - कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा।

किन्तु आचार्य नरेन्द्र देव के मत में वेदना मैथुन-राग के समुदाचार के पूर्व की अवस्था है क्योंकि वहाँ वेदना के कारणों का प्रतिसंवेदन होता हैं।

(VII) तृष्णा - बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों में तृष्णा को 'पौनर्भविकी', 'नन्दिराग-सहगता' तथा 'तत्रभिनान्दिनी' के रूप में स्वीकार किया गया है तथा उसके तीन विभेद माने गये हैं - काम-तृष्णा, भव-तृष्णा एवं विभव-तृष्णा। तृष्णा मूलतः सुख की खोज और उसमें आसक्ति हैं। उसका जन्म प्रिय रूप में बताया गया है। तृष्णा में बँधे होने के कारण मनुष्य संसार के पार नहीं जा पाता।

(VIII) उपादान - उपादान तृष्णा के विषय को अभिनिवेश पूर्वक ग्रहण और उसमें आसक्ति है। उपादान का तृष्णा से भेद है। यह उस पुद्गल की अवस्था है जो भोगों की सीमा में दौडता है अथवा चतुर्धि क्लेश है। इस प्रकार उपादान इस चतुर्विध क्लेश की स्थिति है।

(IX) भव - बौद्ध धर्म में कर्म करने के फल को अनागत भव कहा गया है। आचार्य नरेन्द्र देव इस कर्म भव को स्वीकार करते हैं क्योंकि उसके कारण भव होता है।

www.ignited.in

भोगों की सीमा में कृत और उपचित कर्म पौनर्भविक हैं। जिस अवस्था में पुद्गल कर्म करता है, वह भव है।

(X) जाति - जाति को प्रतिसन्धि माना गया है। मरण के अनन्तर प्रतिसन्धि काल के पाँच स्कन्ध जातियाँ हैं। ऐसा मानते हैं कि प्रत्युत्पन्न की समीक्षा में जिसे विज्ञान का नाम दिया जाता है, उसे अनागत भव की समीक्षा में जाति की संज्ञा दी गयी है।

(XI) जरा - मरण-शोक-परिदेव दुख-दौर्मनस्य-उपायास-जाति से वेदना तक जरा-मरण है। प्रत्युत्पन्न भव के चार अंग-नामरूप, शडायतन, स्पर्श और वेदना-अनागत भव के सम्बन्ध में जरा-मरण कहलाते है।

बौद्ध धर्म प्रतीत्य-समुत्पाद चार प्रकार के हैं - 1. क्षणिक 2. प्राकर्शीक 3. साम्बन्धिक 4. आवस्थिक।

1. क्षणिक - जिस क्षण क्लेश-पर्यावस्थित पुद्गल करता है - उस क्षण में द्वादश अंग परिपूर्ण होते हैं - (क) उसका मोह अविद्या है, (ख) उसकी चेतना संस्कार है, (ग) उसका आलम्बन विशेष का स्पष्ट विज्ञान है, (घ) विज्ञान-समूह चार संस्कार नामरूप है, (छ) स्पर्श का अनुभव वेदना है, (ज) राग तृष्णा है, (झ) तृष्णा-सम्प्रयुक्त पर्यावरण उपादान है, (ञ) वेदना या तृष्णा से सम्बन्धित काय या वाक्-कर्मभव है, (ट) इन सब धर्मो का मिलाजुला उत्पाद जाति है, (ठ) इनका अन्त जरा है, इनका भंग मरण है।

2. प्राकर्षिक - तीन निरन्तर जन्मों में सम्बद्ध होने से यह प्राकर्षिक भी है।

3. साम्बन्धिक - हेतु-फल-सम्बन्ध से युक्त होने के कारण साम्बन्धिक कहा गया है।

4. आवस्थिक - पाँच स्कन्ध की अवस्थाओं की परम्परा होने के कारण इसे आवस्थिक कहा जाता है।

हीनयान तथा महायान में प्रतीत्य समुत्पाद का विकास भिन्न दिशाओं में हुआ। हीनयान में प्रतीत्य समुत्पाद के व्यावहारिक पक्ष का विश्लेषण हुआ जिसे एक नवीन हेतु-प्रत्युयवाद ने क्रमश: उसको स्थानच्युत कर दिया। महायान में प्रतीत्य समुत्पाद के पारमार्थिक पक्ष को प्रधानता दी गयी। शालिस्तम्ब सूत्र में इस द्वादशनिदानात्मक प्रतीत्य समुत्पाद की विस्तृत आलोचना की गयी है। किन्तु साथ ही महायान की दृष्टि का भी समावेश है।

यह द्वादशांग प्रतीत्य समुत्पाद एक दूसरे का कारण है, न अनित्य, न नित्य, न संस्कृत, न असंस्कृत, न अहेतुक, न अप्रत्यय, न वेदयिता, न अवेदयिता, न प्रतीत्य समुत्पन्न, न अप्रतीत्य समुत्पन्न, न क्षय धर्म, न अक्षय धर्म, न विनाष धर्म, न अविनाश धर्म, न निरूद्ध धर्म, न अनिरूद्ध धर्म। अनादि काल से प्रवाहित नदी की धारा के समान चलता रहता है। तथापि इसमें अविद्या-विज्ञान के बीज का आवरण है। इस प्रकार विज्ञान बीज कर्म क्षेत्र में प्रतिष्ठित तृष्णा स्नेह से सिंचित एवं अविद्या से अकीर्ण होकर बढंता है।

विज्ञानवाद:-

बौद्ध धर्म-दर्शन में विज्ञानवाद की व्याख्या करने की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें 'चित्त' को परम तत्त्व स्वीकार किया जाता है तथा विज्ञान के आधार पर संसार के प्रत्येक तत्त्व की व्याख्या का प्रयास किया जाता है। इसमें पुरानी बौद्ध परम्परा में "ज्ञान" के स्थान पर "विज्ञान" शब्द माने गए।

विज्ञानवाद का सिद्धान्त बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत एक व्यवस्थापूर्ण तार्किक एवं आध्यात्मिक विकास की ओर संकेत करता है। सामान्य लौकिक व्यवहार में घट-पट आदि पदार्थो को तथा उनके व्यवहार करने वाले लोगों को वास्तविक माना जाता है। हीनयान में उनकी सत्ता को केवल शाब्दिक रूप से भ्रामक मानकर इनके स्थान पर 'द्वादश आयतनों' की सत्यता को स्वीकार किया गया। इस दृष्टि से घट आदि पदार्थो का क्षणिक, इन्द्रिय ग्राहम रूप आदि 'धर्मो' के विकसित मात्र हैं तथा 'पुरूष' अथवा 'जीव' चिन्तन में एक ओर चक्षु आदि इन्द्रियों पर तथा दूसरी ओर रूप आदि विषयों पर आधारित है। इन्द्रियाँ आध्यात्मिक तत्त्व हैं और विषय बाहम। इन दोनों पर ही चित्त अथवा विज्ञान का प्रवाह आश्रित है। इस उपदेश को समझने से 'पुद्गल नैरात्म्य' का ज्ञान होता है तथा घट-पट आदि का स्थूल एवं स्थिर जगत् के रूप रस आदि की सूक्ष्म धाराओं में विलीन हो जाता है। सामान्य लोक-व्यवहार की तुलना में यह हीनयानी दर्शन पूर्ण रूप से 'वैज्ञानिक' है। महायान में इसी भावना को अधिक विकसित किया गया है। आत्मा के समान बाहम पदार्थ भी आकृतिरहित हो जाते हैं।

चीनी यात्री हुआन-च्वाँग ने भी बौद्ध धर्म के विज्ञानवाद की व्याख्या में अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमें सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ "सिद्धि" है। असंग के महायान सूत्रालंकार के विज्ञानवाद का आधार माध्यमिक विचार था। इसके विपरीत हुआन-च्वाँग के सिद्धान्त में विज्ञानवाद का स्वतन्त्र आधार है। यह माध्यमिक सिद्धान्त से सर्वथा अलग होकर अपने को महायान का एकमात्र सच्चा प्रतिनिधि मानता है। हुआन-च्वाँग का "सिद्धि" विज्ञप्तिमात्रता के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। जो लोग पुद्गल नैरात्म्य

www.ignited.in

में अति प्रसन्न या अति दुःखी हैं, उनको इसका ज्ञान कराना ही ग्रन्थ का उद्देश्य है।

बौद्ध संघ के भेद:-

वैदिक कर्मकाण्ड, यज्ञवाद ब्राह्मणवाद, बहुदेववाद, द्वैतवाद एवं प्रवृत्तिवाद से जनता ऊब चुकी थी। मानव जीवन संघर्षमय था। उसको सहारा देने के लिए बुद्ध ने इस धर्म को प्रसारित किया। उनके जीवनकाल में ही अपार जनमानस इसकी ओर आकृष्ट हुये थे जिससे दिनोंदिन बौद्ध भिक्षुओं की संख्या बढ़ती गयी। इसे व्यवस्थित करने हेतु बौद्ध संघ की स्थापना हुई। किन्तु दिन प्रतिदिन बौद्ध भिक्षुओं की बढ़ती हुई संख्या के कारण बौद्ध संघ का विरोध होने लगा था। महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में ही बौद्ध संघ में विभेद आरम्भ हो गया जिस की पुष्टि महायानसूत्र से होती है। आचार्य नरेन्द्र देव महायानीसूत्र के आधार पर कहते हैं - भगवान् ने समाधि से उठकर सारिपुत्र को सम्बोधित किया - "हे सारिपुत्र ! बुद्धों का ज्ञान, सम्यक् सम्बुद्धों का ज्ञान श्रावक और प्रत्येक बुद्धों के लिए जानना कठिन है। विवेकानुसार वे धर्म का प्रसार करते हैं और भिन्न-भिन्न स्वभाव के अनुसार विविध उपाय कौशलों के द्वारा उनके दुख का निवारण करते हैं।" भगवान् के इन वचनों को वहाँ उपस्थित अज्ञात कौण्डिन्य आदि अर्हत, क्षीणस्रव, महाश्रवकों ने सुना। यह आश्चर्य था कि आज भगवान् बिना प्रार्थना किये स्वयं कह रहे हैं कि बौद्ध-धर्म समझने में कठिन है? भगवान् ने जो भी बताया उसे हमने प्राप्त ही किया है। फिर ऐसा क्यों कह रहे हैं। सारिपुत्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे अर्हतों की इस शंका का निवारण करें। भगवान् ने कहा - सारिपुत्र! सुनों मैं कहता हूँ। भगवान् के ये शब्द निकलते ही उस परिषद् से पाँच हजार भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकायें आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम करके चल गए। तब भगवान् ने कहा अच्छा हुआ सारिपुत्र! अब संघ शुद्ध हो गया।

तथागत ने अपने जीवनकाल में सदैव संघ की अक्षुणता बनाए रखने का प्रयास किया। परन्तु विभेद का बीज उनके जीवनकाल से ही अंकुरित हो रहा था। यह विभेद का रूप उनके मरणोपरान्त और तीव्र हो गया। विनय से ज्ञात होता है। कि पाँ सौ भिखुओं के साथ महाकश्यप पावा और कुशीनारा के बीच थे जब उन्होंने एक आजीवक से सुना कि सप्ताह भर पूर्व तथागत का परिनिर्वाण हुआ है। यह सुनकर रागद्वेश रहित भिक्षु रोये तथा वीतराग भिक्षु संसार की अनित्यता का स्मरण कर दुःखी हुए। किन्तु सुभद्र नाम के एक वृद्ध प्रव्राजक ने कहा कि "अच्छा हुआ जो महाश्रमण नहीं रहे। वे प्रायः कहा करते थे ऐसा मत करो, ऐसा मत करो। अब इससे छुट्टी मिली अब हम जो चाहेंगे करेंगे जो न चाहेंगे, न करेगें।"

निष्कर्ष:-

समय की प्रगति के अनुसार बौद्ध-धर्म के अनुयायी भी बहुत अधिक बढ़ गए। फल यह हुआ कि इसमें ऐसे लोग आ गए जिनका मार्ग पर चलना अत्यंत कठिन था। अधिकांश लोग दूसरे-दूसरे धर्मो को छोड़कर आए थे। वे न तो बुद्ध के बतलाए हुए मार्ग को समझते थे और न उनके अनुसार चलने की शक्ति ही उनमें थी। सम्राट् अशोक जैसे संरक्षकों की सहायता से बौद्ध-धर्म के अनुयायियों की संख्या बढ़ तो गई थी किंतु अधिकांश अनुयायी उसके प्राचीन आदर्श के अनुसार चल नहीं सके। ये लोग बौद्ध-धर्म को नीचे स्तर पर ले आए। किंतु अधिकांश लोगों ने कट्टर-पंथियों का साथ छोड़ा और जन-साधारण के लिए एक भिन्न सम्प्रदाय कायम किया। नये सम्प्रदाय का नाम 'महायान' तथा पुराने का 'हीनयान' पड़ा। यह नामकरण एक दुष्टि से ठीक ही है। हीनयान का अर्थ 'छोटा पंथ' है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके द्वारा कम ही व्यक्ति जीवन के लक्ष्य के स्थान तक जा सकते हैं। किंतु महायान का अर्थ 'बड़ी गाड़ी' या 'बड़ा पंथ' है। इसके द्वारा अनेक व्यक्ति जीवन के लक्ष्य स्थान तक पहुँच सकते हैं। महायान में उदारता तथा धर्म-प्रचार की भावना विद्यमान थी। फलस्वरूप महायान का प्रचार हिमालय के उत्तर में चीन, कोरिया तथा जापान तक हो गया। इसमें अन्यान्य मतों के अनुयायी भी प्रविष्ट हो गए। ज्यों-ज्यों इसका प्रचार हुआ त्यों-त्यों नए आगंतुकों के धार्मिक विचारों का भी इसमें समावेश होता गया। वर्तमान महायानियों को अपने धार्मिक विचारों का भी इसमें समावेश हो गया। वर्तमान महायानियों को अपने धार्मिक सम्प्रदाय के लिए गर्व है। ये अपने धर्म को जीवित तथा प्रगतिशील धर्म मानते हैं। इस सम्प्रदाय की उदारता ही इसे अनुप्राणित करती रहती है।

सन्दर्भ:-

पाण्डेय राम शकल (2005): भारतीय शिक्षा की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मन्दिर; आगरा

शर्मा, डॉ. शंकर दयाल (2008): शिक्षा-दिशा और दृष्टि कोण, प्रवीण प्रकाशन; नई दिल्ली

मुखोपाध्याय, मर्मर , (2002): शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन, नीपा; नई दिल्ली

सोनी, सुरेश (2004): हमारी सांस्कृतिक विचारधारा के मूल स्त्रोत, लोकहित प्रकाशन; लखनऊ

पाण्डेय राम शकल (2002): प्राचीन भारतीय में शिक्षा मनीषी, शारदा पुस्तक भवन; इलाहाबाद

Corresponding Author

Shveta Kumari*

Researsch Scholar